Academe *Journal of Education & Psychology*
Volume-14, Issue-1, Year-2024 (January-June)
PP: 162- 168 *ISSN No: 2249-040X*

श्यौराज सिंह बेचैन की कहानियों में दलित जीवन की त्रासदी

जय प्रकाश कुमार

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोध–सारांश :–

श्यौराज सिंह बेचैन एक ऐसे दलित चिंतक, विचारक और साहित्यकार हैं, जो किसी पहचान के मोहताज नहीं हैं। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने भी अपने जीवन की शुरुआत करोड़ों भारतीय दलितों की तरह की थी जो अस्पृश्यता का दंश झेलते, तथाकथित सवर्णों का शोषण–उत्पीड़न सहते जीवन गुजारने को मजबूर हैं। यह बात अलग है कि बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर से प्रेरित होकर उन्होंने शिक्षा को अपनी शक्ति बनाया। भेदभाव, छुआछूत, शोषण, उत्पीड़न की त्रासदी जो उन्होंने निजी रूप से झेली उसे उन्होंने अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' और 'जिंदगी को ढूंढते हुए' में उद्घाटित किया है। साथ ही उन्होंने भारतीय दलितों के दैनिक जीवन की विषमताओं, विसंगतियों और विद्रोही चेतना का भी बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन–अनुशीलन किया है। 'मेरी प्रिय कहानियाँ' बेचैन जी का कहानी संग्रह है। उक्त संग्रह में उन्होंने दलित जीवन के तमाम पहलुओं को उद्घाटित किया है। इक्कीसवीं सदी में भी दलितों पर जुल्म कम नहीं हुए हैं, यह बात बेचैन जी को अत्यधिक परेशान करती है। दलित अस्मिता पर केंद्रित अपनी कहानियों में बेचैन जी ने भारतीय समाज के रेशे–रेशे को उद्घाटित किया है। समाज में व्याप्त जड़ता पर बेचैन जी की कहानियाँ जोरदार प्रहार करती हैं।

बीज–शब्द :– दलित, ब्राह्मणवादी, भारत, इक्कीसवीं सदी, स्त्री, पितृसत्ता, बलात्कार, सवर्ण, पूंजीवाद, आरक्षण, मुसलमान, आदिवासी।

प्रस्तावना :–

जैसे भारत में जन्म से ही व्यक्ति की जाति का निर्णय हो जाता है ठीक वैसे ही हर जाति के लोगों के लिए कर्म ब्राह्मणवादी व्यवस्था में पहले से ही बंधे हुए हैं। बेचैन जी ने इन स्थितियों का बहुत नजदीक से अनुभव किया है। आज इक्कीसवीं सदी में भले ही संविधान की ताकत पुरानी दीवारों को तोड़ रही है लेकिन पहले दलितों की स्थिति बेहद विकट थी। ब्राह्मणों ने उनके लिए ऐसे कामों की व्यवस्था की थी जिसे करना प्रतिदिन मौत को गले लगाने जैसा था। बेचैन जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– "सवर्णों को दलितों के कार्यों का न अनुभव था, न जरूरत, बल्कि इसका

आभास तक उन्हें अपमानजनक लगता था। उनके दैनिक स्वच्छ वातावरण में यह असुविधाजनक था। जहाँ तक मेरी जानकारी है, मुर्दा मवेशी उठाने पर चमारों का और मैला ढोने पर भंगियों की अविकल्प विवशता थी। उसके उलट गुणकारी शिक्षा, मीडिया, कला और संस्कृति पर ब्राह्मणों का और व्यापार पर वैश्यों का वर्चस्व है।"[1] उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि मलाईदार और आरामदायक कार्यों पर समाज की तथाकथित ऊंची जातियों ने अपना कब्जा सदियों से जमाए रखा है। दलितों ने बाबा साहब, जगजीवन राम, फूले, पेरियार आदि से प्रेरणा ले कर ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ मुखरता से अपनी आवाज उठाई तब जा कर आज समाज में कुछ परिवर्तन नजर आता है। बेचैन जी की विशेषता यह है कि अपनी कई कहानियों में उन्होंने सवर्ण चरित्रों के द्वारा ही उनकी पोल खोलने की कोशिश की है। दरअसल बेचैन जी की हार्दिक इच्छा यह है कि समाज में जो विषमता है वह समाप्त हो और सहयोग, समन्वय एवं सामंजस्य का भाव विकसित हो। इसी लिए दलितों के साथ–साथ उन्होंने ऐसे नायक भी गढ़े हैं जो तथाकथित ऊंचे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शोध–विस्तार :-

बेचैन जी की कहानी 'क्रीमीलेयर' वर्तमान समय के उस सत्य को उजागर करती है जो सभ्य समाज की असलियत को बयां करता है। दो सवर्ण पात्रों–सुधांशु और प्राणीता के इर्द–गिर्द बुनी गई उक्त कहानी में सवर्णवादी पुरुष की दूषित कूटनीतिक झलक नजर आती है। यह सच है कि सवर्ण परिवारों में भी स्त्रियाँ दलितों की ही श्रेणी में आती हैं। इसी लिए जब स्त्रियाँ पुरुषों से कोई सवाल करती हैं तो सीधे उनके अहं पर चोट लगती है। प्राणीता जब अपने पति सुधांशु से संवाद के दौरान इस बात को महसूस करती है कि उसका पति जातीय अहंकार से बुरी तरह ग्रस्त है तब वह उसे मानवता की घुट्टी पिलाना चाहती है। दलितों की व्यथा से उसे रुबरु करना चाहती है। वह कहती है– "मैं कब कहती हूँ कि ऊँची जाति के हक किसी को खाने दो और कौन नीची जात, ऊँची जात के हक खा सकती है? वे तो अपने ही हक हासिल नहीं कर पा रहीं। किसी का क्या खाएंगी, कितनी पंचवर्षीय योजनाएँ गुजर गईं, एससी / एसटी में भूमि वितरण का संकल्प आज भी पूरा नहीं हुआ। देश में सबसे ज्यादा आवासहीन हैं तो यही हैं। में तो तुम्हारी उस अनीति की बात करना चाहती हूँ जिसके तहत तुमने कहा था कि एससी/ एसटी में जिन्हें एकबार नौकरी मिल गई है, उन्हें दूसरी बार नहीं मिलने दूंगा।"[2] दरअसल आरक्षण को लेकर तथाकथित ऊंची जाति के लोगों के हृदय में एक विशेष प्रकार की मनोग्रंथि है। वे इस बात को स्वीकार ही नहीं कर पाते कि जिस कार्यालय में वे 'बाबू' बन कर कुर्सी पर बैठते हैं वही उनके सामने कोई दलित भी कुर्सी पर बैठे। उन्हें रोकने के लिए ही वे तमाम तरह के प्रपंच रचते नजर आते हैं। प्राणीता जैसी सवर्ण और संवेदनशील स्त्रियाँ जब दलितों के पक्ष में आवाज उठाती हैं तब उन्हें भी हर किसी से

जली–कटी सुनने को मजबूर होना पड़ता है। सुधांशु प्राणीता को कहता है– "मतलब तो तुम बाज नहीं आओगी, तरफ़दारी एससी/ एसटी की ही करोगी। तुम यह भी नहीं देखतीं कि तुम सवर्ण हो, तुम्हारा वर्ण इंटरेस्ट हमारे साथ ही होना चाहिए। ये लोग जनरल में कम्पीटीशन करें, मैरिट में आगे आएँ। मुझे कोई एतराज नहीं होगा।"[3] दलितों को नीचा दिखाने के लिए सवर्ण बार–बार एक शब्द का सहारा लेते हैं। वह शब्द है– मेरिट। दरअसल मेरिट की आड़ में सवर्णों ने हमेशा दलितों का शोषण किया है। सदियों से दलितों को वह अवसर प्राप्त होने नहीं दिया गया जो सवर्णों को सहज–स्वाभाविक रूप से मिलता रहा और आज जब संविधान की ताकत से उनकी उन्नति की संभावना बन रही है तो उन्हें मेरिट के नाम पर जलील किया जा रहा है।

पूर्व में ही कहा गया कि स्त्रियाँ भी दलितों की तरह ही शोषित, उत्पीड़ित और सदियों से अपने हकों से वंचित हैं। बेचैन जी की दृष्टि में स्त्रियों से अधिक लाचार कोई दूसरा नहीं है। उनकी कहानी 'बस इत्ती सी बात' इस तथ्य की पुष्टि करती है। बीना अपनी सहेली कीर्ति से कहती है– "सारी गालियां स्त्री के अंगों को लेकर हैं। अपहरण ओर बलात्कार जैसे अपराध स्त्री के हिस्से ही आते हैं और तुम समझती हो कि बनाने वाले ने स्त्री को कुछ विशेष बना दिया है।"[4] दरअसल कुलीन स्त्रियों को पितृसत्तात्मक समाज में ऐसी ही ट्रेनिंग दी जाती है कि वे बहुत विशिष्ट हैं। उनकी प्रतिष्ठा के लिए ही पुरुष लड़ने–कटने पर आमादा रहते हैं परंतु सच्चाई यह है कि ये सारे प्रपंच स्त्रियों को बांधे रखने के लिए किए जाते हैं। पुरुष नहीं चाहते कि स्त्रियों को दुनिया की हवा लगे इसी लिए उन्हें कमरे में बंद कर के यह बात समझाते हैं कि उनकी इज्जत ही परिवार की इज्जत है। बीना उस नैरेटिव को खंडित करती है और कीर्ति के सामने स्त्रियों की हकीकत को प्रस्तुत करती है। इस सच को खारिज नहीं किया जा सकता है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में भी स्त्रियाँ दोयम दर्जे की ही नागरिक हैं। स्त्रियों की यौनिकता ज्यों ही भंग होती है, समाज उससे कन्नी कटाने लगता है। बलात्कार पीड़िता को भी संदिग्ध निगाह से देखा जाता है। समाज के रवैए से ऐसा लगता है कि बलात्कारी से अधिक गलती बलात्कार पीड़िता की है। सच्चाई यह है कि समाज बलात्कार पीड़िता को स्वीकार नहीं कर पाता। स्त्रियों के दोयम दर्जे के जीवन का चित्रण करते हुए किस प्रकार बेचैन जी दलितों को भी उनके साथ जोड़ देते हैं यह देखना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा है– "आखिर एक धोबी की प्रतिक्रिया सुनकर श्री राम ने सीता माता को घर से निकाला था कि नहीं, मान मर्यादा-लोकलाज के लिए? पर राम ने सीता के प्राण तो नहीं निकाले थे। तुम राम से अपनी तुलना केसे कर सकते हो? सभ्य समाज में तो तलाक के बाद भी एक-दूसरे का सम्मान करते हैं स्त्री-पुरुष।..... ऐसा यूरोप में होता होगा, हमारे लिए तो अपनी शान ही, पहचान है। जिस जूती को हमने पाँव से उतारकर फेंक दिया, उसी जूती में अपना पाँव घुसेड़ने की कोई भंगी, चमार, पासी, कुम्हार, जुलाहा, धोबी, धानुक, खटीक, जुर्रत करेगा क्या?

हमारी जात की परित्यक्ता को भी हाथ लगाएगा?"[5] उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि तथाकथित सभ्य समाज में न तो महिलाओं की इज्जत है और न ही दलितों की।

आज भी दलितों को गरीबी, अस्पृश्यता, अशिक्षा, भुखमरी आदि समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। आज संसद में दलितों के अनेक प्रतिनिधि पहुँच चुके हैं लेकिन ऐसा लगता है कि एक बार सत्ता की महक लग जाने के बाद वे भी अपने लोगों के विषय में सोचना छोड़ देते हैं। अधिकांश सवर्णों के पास गाढ़े समय के लिए भूमि का अवलंब होता है। भूमि को बेच कर वे लोग बेटी का विवाह, बीमारी का उपचार आदि आसानी से कर लेते हैं। दलितों का यह दुर्भाग्य है कि उन्हें विरासत में एक धुर भूमि भी नहीं मिलती है। पीढ़ी दर पीढ़ गरीबी झेलने वाला दलित परिवार चाह कर भी गरीबी की जंजीरों को काट नहीं पाता। यह बात बेचैन जी की आत्मकथा से भी प्रमाणित होती है। स्वयं बेचैन जी ने ही पेट पालने के लिए कौन–कौन से कार्य किए यह सर्वविदित ही है। कलावती कहानी में एक दलित पिता अपनी पुत्री का विवाह करना चाहता है लेकिन उसके घर की हालत कैसी है उसका चित्रण जिस प्रकार बेचैन जी ने किया है वह पाठकों की आंखों के कोर को भिगाने के लिए पर्याप्त है। निम्नांकित पंक्तियाँ द्दष्टव्य हैं– "बेटियाँ निरक्षर थीं और पिता की इच्छा थी कि लड़का कुछ रोज़गार करने वाला मिले तो उनका जीवन सुखपूर्वक कट जाए। पर कहीं घर ठीक-ठाक मिलता तो वर नहीं मिलता। वर मिलता तो घर नहीं मिलता। दोनों मिलते तो उनकी दहेज की माँग इतनी बड़ी होती कि उन्हें लगता कि वे पूरी नहीं कर पाएँगे। कलावती की कहानी का उत्तरार्द्ध ही एक तरह से उसका सब कुछ था। देखते-देखते उसके घर की हर दीवार दरकने लगी थी।"[6] स्पष्ट है कि दलित स्त्रियों का जीवन और अधिक त्रासद कहा जा सकता है। इस बात की सहज ही कल्पना की जा सकती है कि अशिक्षित परिवारों में बेटियों को एक उम्र के बाद किस तरह का बोझ समझा जाने लगता है, ऐसे में अन्यान्य कारणों से अगर उनका विवाह ठीक नहीं होता है तो बार–बार उन्हें अपने घर में भी उलाहना सुननी पड़ती है, जैसे वे ही विवाह न होने की सबसे बड़ी वजह हों। उक्त कहानी का पत्र अशोक भी भारतीय वर्ण व्यवस्था और वर्तमान राजनीति पर तीखा प्रहार करते हुए कहता है– "देश के नेताओं को शायद हमारी गरीबी-मज़दूरी का पता नहीं है। उन्हें शायद यह भी पता नहीं है कि हमें मुफ़्त की खैरात किसी की नहीं चाहिए। हमें काम चाहिए, हमें जीविका के साधन चाहिए।..... देश को आज़ाद कराया, कुर्बानी दी। पर तुम्हारे देश के गुलाम बच्चे तो गुलाम ही रह गए। उनके लिए तालीम, धंधा, व्यवसाय, मुनाफे का सौदा बनाकर स्कूलों को देश से छीन लिया। निजी बपौती बना लिया।"[7] उपर्युक्त पंक्तियों में एक ऐसे दलित युवक की व्यथा है जो काम करना चाहता है, अपना और समाज का भाग्य बदलना चाहता है लेकिन वह व्यवस्था के आगे पूरी तरह से पंगु हो जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था में भी दलित ही आखिरी पायदान पर नजर आते हैं। उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। देश के

प्राकृतिक संसाधनों पर सबसे पहला हक यहाँ के मूल निवासियों का है लेकिन सरकार और प्रशासन की बागडोर जिन सवर्णों के हाथों में है वे उसे अपनी 'बपौती' समझ कर पूंजीपतियों को दे रहे हैं और दलित बेचारे मुँह ताक रहे हैं।

बेचैन जी की कहानी 'शिष्या बहु' भी सवर्णों की कारस्तानियों को उद्घाटित करती है। आरक्षण पर पैनी निगाह रखने वाले शातिर पंडित वर्णानंद को जब यह महसूस हुआ कि अब बिना आरक्षण के नौकरी प्राप्त करना आसान नहीं है तब उसने एक कुटिल युक्ति निकाली। उसकी कुटिलता निम्नांकित पंक्तियों में स्पष्ट होती है– "अगर ब्राह्मण बच्चे एससी/एसटी प्रतिभाओं को अपने घरों में नहीं लाएँगे तो वे कहीं ओर जाएँगी। मैं तो कहता हूँ आरक्षण का विरोध करना बंद करो। अंतरजातीय विवाहों का समर्थन करो। चुन-चुनकर लाओ एससी/एसटी को। आरक्षण तो खुद ही बहुओं के साथ-साथ हमारे घरों में चला आएगा।..... छोटे होने, नीची जात होने का एहसास तो हम कराते ही रहेंगे ना उन्हें तो वे शादी करके ऊँची जात क्यों नहीं बनना चाहेगी, आखिर जातिसूचक सरनेम की भी तो भूमिका होनी चाहिए।"[8] उक्त पंक्तियाँ इस बात की द्योतक हैं कि तथाकथित सवर्ण हर स्थिति में षडयंत्र के फिराक में ही रहते हैं। बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने जातीयता की दीवार को गिराने का नारा दिया था और अंतरजातीय विवाह की वकालत की थी लेकिन यहाँ पंडित विवाह में भी सौदेबाजी करता नजर आता है। साथ ही इस बात की भी पुष्टि करता है कि समय–समय पर दलित बहुओं को वे लोग नीचा दिखाते रहेंगे।

बेचैन जी की प्रसिद्ध कहानी 'रावण' भी जटिल सवर्णवादी व्यवस्था की पोल खोलती है। एक तरफ तो समकालीन राजनीति में 'हिंदुत्व' का नारा बुलंद किया जाता है। सभी हिन्दू जातियों को एक हो कर मुसलमानों के खिलाफ एकजुट होने का आह्वान किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ जब मूलसिंह नाम का दलित व्यक्ति गाँव में होने वाली रामलीला में रावण का किरदार निभाने की कोशिश करता है तब जो होता है उसका ब्यौरेवार वर्णन बेचैन जी ने किया है। उन्होंने लिखा है– "लोग धीरे-धीरे मनोरंजन के आनंद में डूबने लगे। अब रावण के सैनिकों को मंच पर आना था। राम ने हनुमान की ओर देखा और हनुमान ने कुंभकरण की ओर। राक्षस और देव दोनों संस्कृतियाँ अस्पृश्यता के सवाल पर एक साथ उपस्थित थीं। .....तब तक हनुमान, सुग्रीव और लक्ष्मण ने ताल ठोंक मंच पर उछलकर कहा, 'उतरि तू स्टेज ते नीचे उतरि'। मूलसिंह बोला, क्यों नीचे क्यों उतरूँ? तू रावण को पाठ नाय करेगो? तब तक उसकी एक-एक बाँह को चार-चार हाथों की गिरफ़्त ने जकड़ लिया। उतरि सारे चमटटा के नीचे उत्तरि।"[9] जातीयता का नंगा नाच जिस तरह से मंच पर हुआ यह इस बात को प्रमाणित करता है कि आज भी तथाकथित सवर्णों के दिलों में दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों के प्रति समन्वय का भाव विकसित नहीं हो सका है। सरकार और कानून के दबाव में भले वे उनके साथ सामंजस्य स्थापित करते नजर आते हैं पर सच्चाई यह है कि उनके

भीतर का जहर यथावत है। "मूलसिंह की रग-रग तोड़ दी गई थी। वह बेहोशी की हालत से बाहर आ रहा था। उसे अँधेरे में से उठाकर जीतराम और उनके साथी बाहर निकाल लाए थे। यूँ दलित विरोधी और दलित समर्थक यादवों में दो गुट स्पष्ट हो गए थे।....एक कलाकार को हरिजन होने के कारण यह सज़ा, धिक्कार है हमारी सोच और समझदारी पर।"[10] वस्तुतः पिछड़ी जातियों में समृद्ध यादव, कुर्मी, कुशवाहा आदि जातियाँ भी ऐसे अवसरों पर सवर्णों के साथ ही खड़ी नजर आती हैं जहाँ दलितों पर अत्याचार होता नजर आता है। लेखक को इस बात से भयानक चिढ़ है क्योंकि उन्हें इस बात का पूरा अंदेशा है कि जब कानून के डर से ही सही सवर्णों का अत्याचार थमेगा तब पिछड़े वर्ग की ये मध्यम जातियां भी उनका शोषण करने से बाज नहीं आयेगीं। निम्नांकित पंक्तियाँ द्दष्टव्य हैं– "पूरे गाँव में सन्नाटा था। अगले दिन चमरियाने और वाल्मीकि बस्तियों में ब्राह्मणों और बनियों द्वारा उकसाये गए यादवों की बेहूदगी को लेकर एक आतंक-सा छाया हुआ था। बाहुबल प्रदर्शन की अगुवाई यादवों ने ही की थी। सवर्णों के इशारे पर उनके मुफ़्त के सैनिकों की तरह। अतः उन्हें दबे स्वर में मन मसोसकर गालियाँ दी जा रही थीं।"[11]

जाति का जहर भारतीय जनमानस में किस कदर व्याप्त है इसका उदाहरण 'आंच की जांच' कहानी की निम्नांकित पंक्तियों में मिलता है– "हमारे यहाँ हर माँ अपने दूध में जाति पिलाती है। हर संस्था जाति पहचान कराती है। पर, इसे तो कुछ भी मालूम नहीं है। इससे मुझे डाउट होता है कि यह बच्चा हाइकास्ट नहीं है, होता तो इसने ज़रूर सुना होता। यह तो मुझे एससी/ एसटी या म्लेच्छ लगता है। भारद्वाज जी ने डॉक्टर से दुःखी मन के साथ कहा।"[12] इस वैज्ञानिक युग में जब पूरी दुनिया ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों पर जीवन की तलाश कर रही है तब तथाकथित सवर्ण बच्चे की जाति तलाश रहे हैं। इस देश के लिए इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है। डॉ. क्रांतिलाल जैसे पात्र कुछ उम्मीद जगाते हैं जो कहते हैं– "भारद्वाज जी संविधान के अनुच्छेद पंद्रह ओर सत्रह भी ज़रा देख लें और जात छोड़कर समान नागरिकता की ओर बढ़ने की शुरुआत करें। अवश्य, डॉक्टर साहब, संविधान अंबेडकर जी का हो या मनु महाराज जी का हम तो उस की पूजा करने वाले हैं। हर चीज पूजा के लिए नहीं है भारद्वाज जी, कुछ चीजें जिंदगी में उतारने के लिए भी होती हैं और हाँ बदलिए आपने आप को.... छोड़िए जात–पांत की चिंता। इंसान का बच्चा है बच्चे में इंटरेस्ट लीजिए।"[13] स्पष्ट है कि बिना जाने भी अगर तथाकथित सवर्णों को यह लग जाता है कि उनके आसपास बैठा व्यक्ति दलित है तो उनकी भृकुटी टेढ़ी होने लगती है। जो लोग बच्चे की जाति ढूंढने लगें उनसे और क्या अपेक्षा की जा सकती है?

निष्कर्ष रुप से यह कहा जा सकता है कि 'मेरी प्रिय कहानियां' संग्रह में श्यौराज जी ने क्रांतिकारी कहानियों का सृजन और संकलन किया है। दलितों की व्यथा और उनका विद्रोह दोनों ही उक्त संग्रह में द्दष्टिगोचर होता है। संविधान निर्माता बाबा साहब के आदर्शों को केंद्र में रख कर लिखी

गई कहानियां मानवता को झकझोरती हैं। मनुष्यों को सही मायने में मनुष्य बनने की एक सार्थक कोशिश 'मेरी प्रिय कहानियां' में संकलित रचनाएं हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण–2018, पृष्ठ–12
2. श्योराज सिंह 'बेचैन', 'क्रीमी लेयर, मेटी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2019, दूसरी आवृत्ति संस्करण-2022, पृष्ठ–17
3. वही, पृष्ठ सं–20
4. बस्स इत्ती-सी बात, पृष्ठ–27
5. वही, पृष्ठ–37
6. कलावती, पृष्ठ–42
7. वही, पृष्ठ–44-45
8. शिष्या-बहू, पृष्ठ–62
9. रावण, पृष्ठ–99
10. वही, पृष्ठ–100
11. वही, पृष्ठ–100
12. आंच की जाँच, पृष्ठ–111
13. वही, पृष्ठ–121